अष्टम अध्याय

ग्रामीण पुनर्निर्माण में ग्राम सत्ता की भूमिका के प्रति ग्रामीणों का दृष्टिकोण

भारत एक सर्वशक्ति सम्पन्न गणतन्त्र है। यह जनता द्वारा शासित है प्रत्येक व्यक्ति, धर्म, जाति, लिंग के परे इसका नागरिक है। दुःख की बात यह है कि भारतीय कृषक अशिक्षित एवं अनभिज्ञ है उन्हें अपने अधिकार एवं कर्तव्यों का ज्ञान नहीं है।

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् जिस नवीन जनतान्त्रिक, धर्म निरपेक्ष एवं समताकारी शक्ति संरचना को विकसित करने का प्रयत्न किया गया। उसमें आंशिक रुप से सप ल होने के पश्चात् भी शक्ति के परम्परागत स्रोतों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सका। पहले जातिगत मान्यताओं के आधार पर उच्च जातियों के अधिकार थे, जबकि आज उच्च जातियाँ चुनावों के माध्यम से अपना प्रभाव बनाये हुए है। वास्तविकता तो यह है कि भारत की राजनीति तथा चुनाव का आधार आज भी जाति के आधार पर बनने वाले गुट हैं। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण शक्ति संरचना में विकसित नवीन प्रतिमानों में आज परिवर्तन के साथ–साथ कुछ परम्परागत विशेषताओं का भी समावेश हुआ है।1

नई पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से गाँवों की तस्वीर बदल चुकी है। परम्परागत शक्ति संरचना में परिवर्तन आया है। गाँवों का विकास पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से ही सम्भव हो सका है। जिससे ग्रामीण नेतृत्व के प्रति ग्रामीण जनप्रत्यक्षीकरण भी हुआ है। लोगों में पंचायतीराज व्यवस्था के प्रति परिवर्तन देखने

को मिल रहा हैं। विचारधारा में भी परिवर्तन आया है। गाँवों में पंचायतें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की लहर दिखायी दे रही है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों का परम्परागत नेतृत्व जाति प्रस्थिति पर आधारित है जिसमें परिवार का आकार, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक हैसियत, उम्र, परम्परागत कौशल, वृहत्तर समाज से सम्पर्क इत्यादि कई कारक हैं। परम्परागत नेतृत्व में रक्त सम्बन्ध, आनुवंशिकता, अनौपचारिक नियन्त्रण इत्यादि भी शामिल है। ग्राम पंचायतों और जाति पंचायत नेतृत्व परम्परागत नेतृत्व के स्वाभाविक उदाहरण हैं।

स्वतन्त्रता के बाद विशेषकर पंचायतीराज व्यवस्था के कानूनी रुप में आने के बाद, ग्रामीण समाज में भी लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया के प लस्वरुप नये नेतृत्व का उदय हुआ। ग्रामीण क्षेत्र में परम्परागत समाज में मूलभूत परिवर्तनों का दौर है। लोकतन्त्रीकरण व लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण ने एक लोकतान्त्रिक नेतृत्व को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।2 गाँव की परम्परागत शक्ति संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं। लेकिन यह भी सही है कि अनेकों क्षेत्रों में परम्परागत अभिजात वर्ग प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया के द्वारा आधुनिक अभिजात बन बैठा है। प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया के द्वारा ही अनेकों क्षेत्रों में परम्परागत प्रभुजातियों के प्रभुत्व को समाप्त करके पिछड़ी जातियों ने सत्ता प्राप्त की है। नयी उभरती नेतृत्व क्षमता में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।3 नये नेतृत्व के क्षेत्र में युवा वर्ग और मध्यम आय वर्ग का सम्मिलित होना भी एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। अब एकतन्त्रीय निरंकुश नेता के बजाय 'सामूहिक नेतृत्व' का सामने आना भी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में भारतीय ग्रामीण समुदाय के जिन पक्षों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है उनका संक्षिप्त विवेचन अग्रांकित ढंग से किया जा

सकता है। भारत गाँवों का देश है। विकास कार्यक्रमों के माध्यम से गाँवों के विकास का प्रयास किया जा रहा है। सामुदायिक विकास का उद्देश्य ग्रामीण समुदाय को आत्मनिर्भर बनाना है। यह कार्यक्रम भारत में 2 अक्टूबर 1952 को देश के 55 गाँवों में प्रारम्भ किया गया। इसी समय "अन्य उपजाओं जाँच समिति ने गाँवों के सर्वांगीण विकास के लिये एक ऐसे राष्ट्रीय विस्तार संगठन" की स्थापना की सिप ाारिश की जो घर पहुँच सके और ग्रामीण विकास कार्य में उन्हें सहयोग दे सके। इस प्रकार की सिप ाारिशों से जहाँ सामुदायिक विकास योजना को विकसित जोने में सहायता मिली, वहाँ "राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्ड" की भी स्थापना की गयी। विकास कार्यक्रम आज अर्द्धविकसित या विकासशील देशों की एक प्रमुख प्रक्रिया है। भारत भी स्वतन्त्रता के बाद विकास की ओर अग्रसर है। यहाँ निर्धनता एवं रहन–सहन के निम्न स्तर की समस्या व्याप्त है। वास्तव में ग्रामीण विकास कार्यक्रम गाँवों में गरीबी दूर करने तथा ग्रामीणों के स्वरोजगार उपलब्ध कराने का एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम हैं, इसके अन्तर्गत लाभ हेतु चुने गये परिवार को उत्पादन योजना में धन लगाने के लिये सरकार से अनुदान तथा बैंक से कर्ज दिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र आज भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। कृषि की दशा पिछड़ी है और यहाँ प्रति एकड़ उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा काप ी कम है। ग्रामीण क्षेत्रों में अज्ञान एवं अशिक्षा भी पायी जाती है। लोगों को रोजगार एवं व्यवसाय सम्बन्धी सुविधायें नहीं प्राप्त हैं। यहाँ कुटरी उद्यनोग को पुनः पनपाने की आवश्यकता है जिससे लोग वर्ष भर कार्य कर सकें। यदि यह कहा जाय कि गाँवों में सभी को भर पेट अन्न, पूरे वस्त्र नहीं मिल पाते और आवासीय समुचित व्यवस ाा नहीं है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।3

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण भारत के सभी स्तर के लोगों का सर्वांगीण विकास करना है। इस विकास का तात्पर्य ग्रामीण समुदाय के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं जीवन के अन्य सभी पक्षों के सन्तुलित विकास से है। इस कार्यक्रम का एक अन्य उद्देश्य विशाल, ग्रामीण जन समुदाय की शक्ति को गतिशील बनाना अर्थात् उन्हें अपने स्वयं के विकास के लिये प्रेरित करना और आगे लाना है। जिससे उनमें स्वयं सहायता का बोध जागृत हो सके। स्वतन्त्रता के अग्रदूत महात्मा गांधी की कल्पना ग्राम स्वराज्य को साकार करने की रही। इसी भावना के अनुरुप संविधान में गाँवों के विकास हेतु मार्ग प्रशस्त करने के लिये पंचायतों के रुप में लोकतान्त्रिक संस्थाओं की स्थापना की नींव रखी गयी थी। संविधान में की गयी व्यवस्थाओं के अनुरुप विभिन्न राज्यों में पंचायतों की स्थापना की गयी। बिहार और उत्तर प्रदेश में 1947 में ही पंचायतों के गठन के लिये अधिनियम पारित किये गये। 1960–61 तक सभी राज्यों ने अपने यहाँ ग्राम पंचायतों के गठन हेतु अधिनियम पारित कर दिये।

विकास कार्यक्रम का तात्पर्य सम्पूर्ण समुदाय का विकास करने और उसे आत्मनिर्भर बनाने से है। सामुदायिक विकास एक ऐसी प्रणाली हैं जिसके द्वारा ग्रामीण समुदाय के लोग अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सर्वांग विकास के लिये सरकार के साथ मिलकर सहयोग करते हैं। सामुदायिक विकास को एक सामूहिक प्रयत्न माना गया है और इस रुप में इसके संचालन में पहले स्वयं समुदाय के लोगों द्वारा होनी चाहिये। यह एक ऐसी योजना है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त समस्याओं को स्थानीय साधनों से समाधान करने पर जोर दिया गया है। इस कार्य में सरकारी दायित्व तो आर्थिक सहायता एवं मार्गदर्शन करने का है। सामुदायिक विकास परियोजनाओं एवं राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों से

यह अपेक्षा की गयी है कि वे कृषि सम्बन्धी एवं औद्यनोगिक पिछड़ेपन, अशिक्षा, निर्धनता, कुपोषण तथा अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों को दूर करने और ग्रामीण समुदाय का विकास करने में समर्थ हो सकेंगे। सामुदायिक विकास के दो उद्देश्य बतलाये गये हैं–

(1) देश के कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि, संदेशवाहन, यातायात के साधनों का विकास तथा ग्रामीण स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के साथ ही साथ शिक्षा में उन्नति करना।

(2) गाँवों में सामाजिक–आर्थिक जीवन को परिवर्तित करने के उद्देश्य से एक सुव्यवस्थित सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रारम्भ एवं निर्देशित करना।

एक अन्य समाजशास्त्री के अनुसार इन कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीणों को अधिक सुखी पूर्ण एवं समृद्धिशाली जीवन के लिये संगठित करना है, जिससे प्रत्येक ग्रामीणों को एक व्यक्ति के रुप में और साथ ही एकीकृत समाज के सदस्य के रुप में विकसित होने का अवसर मिलेगा।4 भारत सरकार के सामुदायिक विकास मन्त्रालय द्वारा इस कार्यक्रम के आठ उद्देश्य बताये गये हैं–

(1) ग्रामीण जनता के मानसिक ़ष्टिकोण में परिवर्तन लाना।

(2) गाँवों में उत्तरदायी एवं क्रियाशील नेतृत्व का विकास करना।

(3) ग्रामवासियों को आत्मनिर्भर एवं प्रगतिशील बनाना।

(4) समस्त ग्रामीण जनता के आर्थिक स्तरोन्नयन के लिये एक ओर कृषि का आधुनिकीकरण तथा दूसरी ओर ग्रामीण उद्यनोगों का विकास करना।

(5) उपर्युक्त सभी सुधारों को व्यावहारिक रुप प्रदान करने के लिये ग्रामीण स्त्रियों एवं परिवारों की दशा को उन्नत करना।

(6) राष्ट्र के भावी नागरिकों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करना।

(7) ग्रामीण शिक्षकों के हितों की रक्षा करना।

(8) ग्रामीणों के स्वास्थ्य का स्तर उन्नत करना और बीमारी से रक्षा करना ताकि वे अधिकाधिक क्रियाशील हो सकें तथा विकास कार्यक्रम के लाभों का उपभोग कर सकें।

ग्रामीण समुदाय में चलाये जा रहे विकास कार्यक्रमों का ग्रामीण जीवन पर काप ी प्रभाव पड़ा है। यद्यनपि देखा जाय तो गाँव, कस्बे, नगर, महानगर और महानगरीय गाँवों में परिवर्तन के विविध स्वरुप देखने को मिलते हैं अर्थात् गाँव जो कस्बे के निकट, गाँव नगर के निकट, गाँव महानगर के निकट आदि में परिवर्तन की प्रकृति अलग–अलग दृष्टिगोचर होती है। जैसा कि अध्ययन क्षेत्र का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समुदाय के समस्त मूल्य परम्परा रुढ़ि, रीति–रिवाज आदि जो देखने को मिलते रहे हैं, वे आज भी अपने मूल रुप के आस–पास दिखायी देते हैं, यहाँ उनमें कमी अवश्य परिलक्षित होती है। इस सन्दर्भ में न्यूमेयर का कथन हैं, ग्रामीण संस्कृति रुढ़िवादिता की ओर झुकी रहती है। यही संस्कृति स्थिरता गाँवों में कूपमण्डूकता और रुढ़िवादिता को जन्म देती है जिससे गाँवों की संस्कृति में परम्परा का अधिक महत्त्व है। वहाँ लोगों के विचारों, इच्छाओं तथा अभिरुचियों में परिवर्तन लाने तथा सहयोग की भावना एवं उत्तरदायित्व को सम्भालने की इच्छा जागृत करने का प्रयास भी किया गया है, यह एक ऐसे समन्वित सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रयास है जिसका लक्ष्य गाँवों के

सामाजिक–आर्थिक जीवन को परिवर्तित करना है। विभिन्न राज्यों में पंचायतों की स्थापना के साथ इन्हें गाँवों के सम्पूर्ण विकास हेतु उत्तरदायी बनाया गया है। पंचायतों का स्वास्थ्य, शिक्षा, वृक्षारोपण, पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजन, खेलकूद जैस अनेक उत्तरदायित्व सौंपने के साथ–साथ इन्हें भूमि प्रबन्ध जैसे महत्त्वपूर्ण दायित्व भी सौंपे गये हैं। इन दायित्वों के निर्वहन हेतु उन्हें विभिन्न स्रोतों अर्थात् भवनों पर बाजार–हाटों, सिंचाई, राजस्व, सिनेमा घरों, वाहनों, पशुओं के पंजीकरण तथा तालाबों आदि पर कर लगाने के अधिकार भी सौंपे गये हैं। पंचायतीराज व्यवस्था के अन्तर्गत गाँवों की वित्तीय व्यवस्था सुधारने और गाँवों में रोजगारपरक योजनायें चलाने के लिये केन्द्र सरकार द्वारा 1 अप्रैल 1989 से जवाहर योजना के माध्यम से ग्राम पंचायतों को सीधे धन उपलब्ध कराया गया लेकिन कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

पंचायत का शाब्दिक अर्थ चुने गये पाँच व्यक्तियों की वह सभा है जो ग्राम कल्याण की देख–रेख करती है। ग्राम पंचायत गाँव जीवन के सभी सामाजिक पक्षों का संगठन कर विकास करती है। महात्मा गांधी ने ग्राम पंचायत को ही ग्रामीण जीवन की उन्नति का आधार माना है। पंचायत लोकतन्त्र की एक इकाई है। समाज तथ व्यक्तियों के विकास के लिये इस संस्था के अपने सिद्धान्त हैं। नवीन पंचायतराज व्यवस्था को सशक्त और सु॰ढ़ बनाने के लिये पंचायतों को 73वें संविधान संशोधन के अनुसार व्यापक एवं विपुल शक्तियाँ प्रदान हैं। इसके लिये संविधान में नयी ग्वारहवीं अनुसूची जोड़कर पंचायतों को अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। अध्ययन क्षेत्र में उत्तरदाताओं के विकास कार्यक्रम को समय–समय पर एक आन्दोलन, उपकरण, विचार, विधि और अन्त में एक क्रियाविधि के रुप में परिभाषित किया गया है। वर्तमान समय में विकास कार्यक्रम का सम्बन्ध

ग्रामीण विकास से जोड़ा गया है। इसका उद्देश्य गाँवों में जीवन–निर्वाह की मुख्य दशाओं में सुधार करना है। सामुदायिक विकास योजना का सामान्य अर्थ "किसी समुदाय का विकास करना" है। इस विकास के अन्तर्गत मूलतः आर्थिक–सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष स्वतः आ जाते हैं। दूसरे शब्दों में समुदाय की प्रगति इस प्रकार से की जाय कि उसका सर्वांगीण विकास हो सके। भारत सरकार के प्रकाशन "इण्डिया" 1959 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के सन्दर्भ में लिखा है कि यह स्वयं ग्रामवासियों द्वारा आयोजित एवं क्रियान्वित एक अनुदान प्राप्त आत्मनिर्भर कार्यक्रम है, जिसमें सरकार तो मात्र तकनीकी मार्गदर्शन और वित्तीय सहायता प्रदान करती है।5 सामुदायिक विकास स्वयं जनता के प्रयत्नों द्वारा ग्रामीण जीवन के सामाजिक एवं आर्थिक रुपान्तरण का प्रयास है। इसी प्रकार "सामुदायिक विकास कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण जीवन के सम्पूर्ण स्तर को ऊँचा उठाने हेतु स्थानीय मानव शक्ति को क्रियाशील बनाने का एक संयुक्त एवं समन्वित प्रयत्न है।6 इससे स्पष्ट होता है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रुपान्तरण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें स्थानीय लोगों के द्वारा पहल की जानी है और सरकार को प्रौद्यनोगिक मार्गदर्शन एवं आर्थिक सहायता प्रदान करनी है। यदि स्वयं समुदाय द्वारा पहल नहीं की जाती है तो उन्हें सामुदायिक विकास कार्यक्रम में भागीदार बनने के लिये विभिन्न प्रणालियों के प्रयोग द्वारा प्रेरित की है। सामुदायिक विकास गाँवों के सर्वांगीण विकास हेतु एक एकीकृत प्रयत्न है, एक विशाल प्रयोग है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम में जहाँ भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति पर बल दिया गया है, शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, कुटीर उद्यनोग, संचार, पशुपालन आदि के विकास का प्रयत्न किया है।

भारतीय गाँवों में सामाजिक एवं स्तरीकरण का मुख्य आधार जाति–प्रथा है। वहाँ विभिन्न जातियाँ जजमानी प्रथा द्वारा आर्थिक रुप से एक–दूसरे पर निर्भर रही है। निम्न एवं उच्च जाति के पारस्परिक सम्बन्ध भू–स्वामी एवं किसान, संरक्षक, मातहत, मालिक एवं सेवक आदि रुप में भी पाये जाते हैं। प्रभुजाति गाँव की राजनीतिक, शक्ति एवं न्याय तथा प्रभुत्व–व्यवस्था को समझाने में सहायक है। 1959 में मैसूर के "रामपुरा'8 गाँव के अध्ययन के समय 'प्रभु जाति' की अवधारणा का प्रयोग किया।7 "प्रभु जाति" को परिभाषित करते हुए लिखा है, एक जाति तब "प्रभु" कही जाती है, जब वह संख्या के आधार पर गाँव या स्थानीय क्षेत्र में शक्तिशाली हो और प्रभावशाली आर्थिक तथा राजनीतिक शक्ति रखती हो। यह आवश्यक नहीं कि वह परम्परागत जाति पदक्रम सोपान में सर्वोच्च जाति ही हो।8 प्रभु जाति की सामान्य विशेषतायें हैं– संख्यात्मक शक्ति, आर्थिक व राजनैतिक प्रभुत्व, धार्मिक कृत्यों अथवा जाति–व्यवस्था में उच्च सामाजिक स्थिति, आधुनिक शिक्षा एवं नवीन व्यवसाय तथा सम्पूर्ण गाँव की एकता, न्याय तथा कल्याण के लिये कार्य। मैसूर की प्रभुजाति ओक्कलिगा का वर्णन

प्रो. श्रीनिवास ने किया है। "तन्जौर जिले के श्रीपुरम गाँव में ब्राह्मण जाति का प्रभु जाति के रुप में उल्लेख किया है।9 प्रभु जाति के स्थान पर प्रभु व्यक्ति का प्रयोग किया है।10

ग्रामीण समाज का स्वरुप, ढाँचा, संगठन और इसकी सामाजिक व्यवस्था नगरीय समाज के प्रतिकूल है। इसके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक ढाँचा व व्यवस्था की अपनी विशेषतायें हैं, जो इसे अन्य समाजों से पृथक करती हैं। जब "ग्रामीण समाज" कहा जाता है तो उसका साप अर्थ "कृषि समाज" होता है, अर्थात् उसके सदस्यों की जीविका–साधन कृषि है। एक समाजशास्त्री ने

कृषक एवं ग्रामीण प्रायः पर्यायवाची शब्द है, कहा है।11 कृषि का विकास प्राकृतिक पर्यावरण और खुले मैदानों में हुआ वहाँ जल की पर्याप्तता थी। कृषि कार्य पूरी तरह से प्रकृति पर आधारित होता था जिससे जीवन में भी प्रकृति एवं उसके क्रिया–व्यापार का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप ृष्टिगोचर होता था। कृषि के साधन परम्परागत एवं प्राचीन थे, जिससे अधिक श्रम के बावजूद उत्पादन कम होता था, बढ़ती जनसंख्या एवं भूमि के अनुपात में अन्तर आता अनुभव किया गया। जिन स्थानों पर पेड़–पौधे या कृषि होती थी उसे आवासीय क्षेत्र के रुप में प्रयोग किया जाने लगा, ऐसी दशा में कृषि के परम्परागत साधन अपनी आबादी के लिये असप ल सिद्ध होने लगे, प लतः कृषि में तकनीकी व्यवस्था का प्रादुर्भाव होना आवश्यक था। उन्नतशील बीज, परम्परागत उपकरणों के स्थान पर आधुनिक उपकरण, प्रकृति पर निर्भरता के स्थान पर मानव ने अपनी व्यवस्था खुद की जैसे– पानी की आवश्यकता होने पर वर्षा, नदी, तालाब के स्थान पर ट्यूबेल पम्पसेट आदि लगा लिये गये।

परम्परागत स्वरुप का तकनीकी स्वरुप में परिवर्तन स्वतः स्पू र्त नहीं था, मनुष्यों ने अब कृषि से प्राप्त प सल का मात्र सामुदायिक आवश्यकता के लिये न मानकर व्यक्तिगत लाभ के लिये करना प्रारम्भ किया, जिससे समाज में व्यवसाय की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है।

किसी भी समाज को समझने के लिये सर्वप्रथम उसकी सामाजिक संरचना को समझना आवश्यक होता है। यह मानना आवश्यक होता है कि उस समाज में जाति, वर्ग तथा श्रेणियाँ कैसी हैं। इनके आधार पर समाज किस रुप में विभाजित है। विभाजन का मुख्य आधिार आर्थिक–सामाजिक स्थितियाँ हैं। ग्रामीण समाज में ऊँच–नीच की भावना भी सामाजिक स्तरीकरण को दर्शाती है, जो धर्म और परम्पराओं के आधार पर समाज को विभाजित करती है ग्रामीण सामाजिक संरचना

में धर्म और परम्परा के स्थान पर कुछ व्यक्तियों और जातियों को काप ी ऊँचा स्थान प्राप्त है और असंख्य जातियों को काप ी नीचा, आर्थिक–सामाजिक ष्टि से अनेक प्रकार के परिवर्तन ग्रामीण समाज में घटित हो रहे हैं जो सामाजिक स्तरीकरण को प्रभावित कर रहे हैं।

भारत में ग्रामीण समुदाय में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही सामाजिक शक्ति के आधार पर व्यक्ति की प्रस्थिति का निर्धारण होता रहा है। अनेक धार्मिक ग्रन्थों, इतिहासकारों एवं विद्वानों ने प्राचीन भारत के गाँवों की राजनीतिक व्यवस्था का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक राजनीतिक व्यवस्था की एक सामान्य विशेषता यह देखी गयी है कि सामाजिक शक्ति के निर्धारण में प्राचीन समय में प्रदत्त प्रस्थिति को महत्त्व दिया जाता था, अर्जित प्रस्थिति को नहीं। अनेक विद्वानों ने भारतीय ग्रामीण राजनीतिक व्यवस्था का जो अध्ययन किया है उसमें ए.एस. अल्तेकर एवं बी.एन. पुरी का नाम उल्लेखनीय है। हेनरीमेन ने "विलेज कम्युनिरीज इन द इस्ट एण्डवेस्ट" में भारतीय गाँवों में वृद्ध लोगों की परिषद एवं मुखियाओं की उपस्थिति का उल्लेख किया है।

सामान्य शब्दों में शक्ति का तात्पर्य किसी भी व्यक्ति एवं समूह के उस दबाव से समझा जाता है जो अन्य व्यक्तियों अथवा समूहों पर स्पष्ट होता है। लोगों को प्रभावित करने की शक्ति की तुलना हम समुद्र की धाराओं से कर सकते हैं, जो समय–समय पर ग्रामीण एवं शहरी जनसमूह रुप पानी को एक अथवा दूसरी दिशा में घुमाती रहती है। इस प्रकार शक्ति किसी व्यक्ति अथवा समूह में निहित एक ऐसी क्षमता है जिसके द्वारा शक्ति धारण करने वाला व्यक्ति या समूह दूसरों की इच्छा के न होते हुए भी उन्हें अपनी इच्छानुसार व्यवहार करने को बाध्य करता है और सभी निर्णय अपने पक्ष में करा लेने में सप ल हो जाता है। अर्थात व्यक्ति चाहे किसी भी

स्थिति में हो वह दूसरों के व्यवहारों को चाहे जिस सीमा तक नियन्त्रित कर लेता है वह उतना ही अधिक शक्ति सम्पन्न होता है। प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति या समूह अपनी कुछ विशेष योग्यता के कारण इतनी शक्ति प्राप्त कर लेते हैं वे उसका कभी भी प्रभावपूर्ण तरीके से उपयोग कर सकते हैं। समाज में प्रभाव का यह प्रतिमान एक ऐसे तन्त्र का निर्माण करता है जो एक विशेष से सम्बन्धित निर्णय रखने वाले व्यक्तियों एवं समूहों को परस्पर सम्बद्ध करता है। "समाज में शक्ति दो रुपों में देखी जा सकती है। एक सत्ता के रुप में तथा दूसरी प्रभाव रुप में। प्रभाव को व्यक्ति एवं समूहों द्वारा व्यवहार और क्रिया को प्रभावित करने वाली शक्ति के रुप में परिभाषित किया जा सकता है।"12 शक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि– "दूसरों की क्रियाओं को नियन्त्रित करने की क्षमता।"13 एक अन्य समाजशास्त्री के अनुसार– "सामान्यतः हम शक्ति को एक व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा इच्छा को दूसरों पर क्रियान्वित करे अथवा दूसरे व्यक्ति द्वारा पूर्ण कर लेने की स्थिति को कहते है।"14 शक्ति का संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय संस्कृति में पारिवारिक निर्णय लेने में वयोवृद्ध पुरुष एवं स्त्री की शक्ति भिन्न–भिन्न है। भारत में वयोवृद्ध पुरुष को स्त्री की तुलना में निर्णय लेने में अधिक शक्ति प्राप्त है। प्रत्येक समुदाय में कुछ लोग ऐसे अवश्य होते हैं जिनमें श ाक्त निहित होती है। यह व्यक्ति समूह के निर्णयों तथा व्यक्तिगत व्यवहार प्रतिमानों को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी समूह के अन्तर्गत इस शक्ति का विस्तार किस वर्ग में होगा तथा शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों तथा अन्य व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों की प्रकृति किस प्रकार की होगी, यही वह प्रमुख आधार है जिसके द्वारा एक विशेष शक्ति–संरचना का निर्माण होता है। ग्रामीण शक्ति संरचना की प्रकृति को स्पष्ट करके इसके सन्दर्भ में ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रकृति को स्पष्ट किया जा सकता है।

परम्परागत भारतीय गाँवों में शक्ति संरचना के तीन प्रमुख आधार देखने को मिलते हैं– जमींदारी प्रथा, गाँव पंचायत एवं जाति पंचायत।16 एक ओर जमींदारी प्रथा समुदाय के लोगों के भौतिक तथा आर्थिक हितों एवं आकांक्षाओं की प्रतिनिधि थी तो दूसरी ओर गाँव पंचायत तथा जाति पंचायतें, ग्रामीण राजनीति की सामाजिक विशेषताओं की प्रतीक थीं। कृषि मुख्य व्यवसाय था, भू–स्वामित्व के अधिकार उनके सामाजिक सम्बन्धों में प्रभुता एवं अधीनता की स्थिति को निश्चित करते थे। भू–स्वामित्व के अधिकार ही समुदायों के लोगों का आर्थिक अपेक्षाओं पर नियन्त्रण रखते थे। जमींदारी व्यवस्था ही गाँवों में शक्ति संस्था के रुप में विकसित हो गयी और यही नेताओं का निर्धारण भी करने लगी। इस प्रथा ने गाँव पंचायत एवं जाति का निर्धारण भी करने लगी। इस प्रथा ने गाँव पंचायत एवं जाति पंचायतों की भूमिकाओं को भी प्रभावित किया। जाति संगठन ने जमींदारी प्रथा के साथ अपनी शक्ति संरचना का विकास किया। गाँवों में शक्ति संरचना का तीसरा प्रमुख आधार ग्राम पंचायतें थी। वर्तमान पंचायती राज की स्थापना से पूर्व गाँवों में सभी जातियों के वयोवृद्ध लोगों द्वारा निर्मित एक परिषद अथवा ग्राम पंचायत होती थी। यह पंचायत जमींदारों की सामूहिक संस्था की शक्ति पर भी नियन्त्रण करती थी। इस प्रकार जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पूर्व गाँव में शक्ति व्यवस्था को निर्धारित करने में जमींदारी व्यवस्था, गाँव–पंचायत व जाति पंचायत की संस्थायें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। कोई भी सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विवाद इन तीनों संस्थाओं द्वारा ही निपटायें जाते थे।

जमींदारी प्रथा से पूर्व गाँवों में भू–स्वामित्व का क्या तरीका प्रचलित था, इस विषय में विद्वानों में असहमति है। हेनरीमेन की मान्यता है कि प्राचीन समय में पितृसत्तात्मक परिवार प्रचलित थे। परिवार का मुखिया अपने सदस्यों के साथ कृषि

कार्य करता था और भूमि सामूहिक स्वामित्व में थी। मुखर्जी एवं अल्तेकर ने हेनरीमेन के विचारों से असहमति प्रकट की है। भूमि पर स्वामित्व के आधार पर उत्तरी भारत में दो प्रकार के गाँव दिखायी देते हैं–

(1) जमींदारी (ताल्लुकेदारी) प्रथा वाले गाँव।

(2) संयुक्त जमींदारी प्रथा वाले गाँव।

जिन गाँवों में ताल्लुकेदारी प्रथा थी वहाँ की सारी भूमि पर जमींदार या ताल्लुकेदार का अधिकार होता था। गाँव के सभी लोग उसकी प्रजा कहलाते थे, जिन्हें केवल खेती करने का अधिकार था। भूमि पर कृषि करने के बदले जमींदारों को लगान देना होता था। जमींदारों को अपनी प्रजा पर अनेक न्यायिक अधिकार भी प्राप्त थे। इन अधिकारों में कानून का कोई हस्तक्षेप नहीं था। जमींदार ही गाँव का मुखिया होता था।

दूसरे प्रकार के गाँवों में जहाँ संयुक्त जमींदारी प्रथा का प्रचलन था, शक्ति संरचना भिन्न प्रकार की थी। इस प्रथा में सभी भूमिदार "थोंकों" में बँटे थे और थोक "पट्टियों" में। एक थोक का एक या अधिक लम्बरदार होते थे। गाँव के किसान, सेवक जातियाँ एवं व्यापारी भी थोक के अनुसार बटे होते थे और उन पर थोक की ही सत्ता होती थी। इस प्रकार संयुक्त जमींदारी वाले गाँव में शक्ति की एक से अधिक इकाईयाँ होती थी।

गाँव पंचायत का संगठन भी जमींदारी प्रथा के अनुसार ही विभिन्न गाँवों में अलग–अलग प्रकार का था। पंजाब एवं दक्षिणी भारत में गाँवों में एक पंचायत होती थी, जिसके अधिकार क्या होंगे एवं सदस्य कौन होगा लगभग तय था। गाँव

पंचायत में विभिन्न "थोकों" के लम्बरदार, ताल्लुकेदारों के ठेकेदार, विभिन्न जाति पंचायतों के वयोवृद्ध व्यक्ति, चौकीदार आदि होते थे।

जाति पंचायतें सम्पूर्ण भारतीय गाँवों में शक्ति का महत्त्वपूर्ण स्रोत थीं। जाति पंचायत ने जाति जाति–व्यवस्था को सुरक्षा प्रदान की। अंग्रेजी राज्य की न्याय–व्यवस्था की स्थापना के साथ ही जाति पंचायतों के कई कार्य भी समाप्त हो गये। जाति पंचायत के प्रमुख अधिकारी चौधरी (प्रधान), पंच (पंचायत की कार्यकारिणी के सदस्य), सिपाही (सन्देशवाहक) आदि होते थे जो सभी निम्न तथा निचली जातियों में वंशानुगत होते थे। इन जाति पंचायतों का प्रभाव मात्र एक गाँव तक सीमित न होकर दस–बीस गाँवों तक पै ला होता था। जाति–पंचायतों के कार्य–भोजन के नियमों को तय करना, विवाह का क्षेत्र तथा तथा नियम तय करना, नियमों के उल्लंघनकर्ता को दण्डित करना तथा विरोधी जातियों व समूहों से जाति की प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा तथा हितों की रक्षा करना आदि थें समय के साथ जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ और नयी चयनित पंचायतों का गठन हुआ तो गाँवों में जाति–पंचायतें क्रियाशील हुई और जातियों के गुट बने। जमींदारी प्रथा में जाति पंचायतों में जातिवाद का तत्त्व दबा हुआ था और जाति पंचायतें शक्ति का द्वैतीयक एवं अपेक्षित स्रोत थी। अब वे ग्रामीण सामाजिक संरचना में सामाजिक तनाव का एक कारण बनी है।

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। आदिकाल से ही भारत में सामाजिक स्तरीकरण का आधार जाति रही है। जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक महत्त्वपूर्ण आधार रही है जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन प्रभावित होता रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में किसी भी क्षेत्र का अध्ययन जाति–विश्लेषण से अपूर्ण ही रहा

है।16 यदि हमें भारतीय सांस्कृतिक तत्त्वों को समझना है तो जाति–प्रथा का अध्ययन आवश्यक है।17 भारत में जाति की व्यापकता और महत्त्व को बताते हुए एक प्रख्यात समाजशास्त्री ने लिखा है– "जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है। सामान्यरुपेण भारत जातियों एवं सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली माना जाता है ऐसा कहा जाता है कि यहाँ हवा में भी जाति घुली हुई है और यहाँ तक कि इससे ईसाई तथा मुसलमान भी अछूते नहीं हैं।"18

जाति एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसकी सदस्यता जन्म से आधारित है और जो अपने सदस्यों पर खान–पान, विवाह, पेशा और सामाजिक सहवास सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्धों का पालन करवाती है। जन्मजात सदस्यता इसकी सर्वप्रथम विशेषता है।

जाति की उपर्युक्त विशेषताओं का संकीर्ण या प्रगाढ़ हो जाना जातिवाद है। जातिवाद जाति से सम्बन्धित एक गम्भीर समस्या है। जातिवाद एक संकीर्ण भावना है जो समाज के सन्दर्भ में न सोचकर अपनी जाति के प्रति चिन्तित रहता है। जातिवाद की संकुचित भावना का व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी जाति के सदस्यों को प्राथमिकता देने में तत्पर रहता है। इस प्रकार जातिवाद या जाति भक्ति एक ही जाति के व्यक्तियों की वह भावना है जो देश या समाज के सामान्य हितों का ख्याल न रखते हुए केवल अपनी जाति के सदस्यों के उत्थान, जातीय एकता और जाति के सामाजिक प्रस्थिति को ़ढ़ करने के लिये प्रेरित करती है। इस प्रकार जातिवाद के अन्तर्गत इसके दो पहलू देखने को मिलते हैं– पहला भावना, दूसरा कर्म। एक एक विचारक के अनुसार– "राजनीतिक भाषा में उपजाति के प्रति निष्ठा का अभाव ही जातिवाद है।"

ग्रामीण समुदाय में अन्तर्विवाह का प्रचलन यातायात एवं संचार के साधनों में वृद्धि जजमानी प्रथा का टूटना, औद्यनोगीकरण तथा नगरीकरण, जातीय प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाना तथा संयुक्त परिवार का विघटन होने के कारण जातिवाद की भावना को बल मिला है।

संस्कृतीकरण, सामाजिक परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण अवधारणा है। संस्कृतीकरण के अभिप्राय निम्न जाति–वर्ण के लोगों द्वारा उच्च जातियों की संस्कृतियों को अपनाना है। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार– "संस्कृतीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक निम्न जाति या जनजाति अन्य समूह एक उच्च जाति और विशेषतः एक "द्विज" जाति की प्रथाओं धार्मिक कृत्यों एवं आस्थाओं को अपनाता है। प्रारम्भ में श्रीनिवास ने इसके लिये "ब्राह्मणीकरण" शब्द का प्रयोग किया था। पश्चिमीकरण से आशय पाश्चात्य देशों के प्रभाव से है। विशेषतः ब्रिटेन के सम्पर्क से जो सामाजिक जीवन में परिवर्तन हुआ उसे पश्चिमीकरण के रुप में जानते हैं। यह अवधारणा मानवतावाद तथा तर्कबुद्धिवाद पर आधारित है। नगरीकरण एवं औद्यनोगीकरण समान धर्म की अवधारणाएँ हैं। उत्पादन–प्रणाली के विकास के साथ नगरों का उदय हुआ। यातायात के साधन सड़क, संचार आदि ने नगरों को जन्म दिया, यही साधन औद्यनोगीकरण के लिये भी

आवश्यक हैं अतः दोनों परस्पर सम्बन्धित अवधारणाएँ हैं। संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, नगरीकरण एवं औद्यनोगीकरण की प्रक्रियाओं ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित एवं परिवर्तित किया है।

ग्रामीण समुदाय में जाति पंचायत भी देखने को मिलती रही है। जाति–पंचायतें किसी एक जाति–विशेष की अपनी पंचायत होती थी। वैदिक काल से ही जाति पंचायतें दिखायी देती रही हैं। कर्मों के आधार पर वैदिक काल में वर्ण

विभाजन हुआ, प लतः पवित्रता–अपवित्रता की धारणा तथा छुआछूत की भावना का जन्मु हुआ। हिन्दू सामाजिक संरचना में अछूत जातियों को अलग कर दिया गया, जिससे अछूतों में असुरक्षा बोध का जन्म हुआ, प लतः अछूत जातियों ने अपनी शक्ति पनपने तथा अपने जातीय मामलों को स्वयं निपटाने के लिये जाति पंचायतों को जन्म दिया। यह निम्न जातियों में जाति–पंचायत की पृष्ठभूमि है किन्तु उच्च जातियों में भी जाति पंचायतें ृष्टिगोचर होती हैं। विभिन्न वर्गों में जैसे–जैसे सामाजिक दूरी और प्रतियोगिता बढ़ती गयी, वैसे–वैसे अपनी जाति के हितों की रक्षा के लिये उच्च जाति के लोगों ने भी जाति पंचायत को जन्म दिया। जाति पंचायतों का जन्म क्यों हुआ, यदि देखा जाय तो हम यह भी कह सकते है कि अपनी ही जाति के सदस्यों के हितों की सुरक्षा हो सके तथा आपसी झगड़ों का निपटारा किया जा सके– यह भी जाति–पंचायत की उत्पत्ति का कारण रहा होगा। परम्परागत शक्ति संरचना में जाति पंचायत का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जाति पंचायत वह शक्तिशाली इकाई थी जो एक क्षेत्र–विशेष में अपनी जाति के सदस्यों के व्यवहारों को निर्धारित करती थी तथा निर्धारण नियमों की अवहेलना करने वाले व्यक्ति को दण्डित करती थी। साधारणतः जाति पंचायत के मुखिया का पद आनुवांशिक था। मुखिया में सम्पूर्ण शक्ति निहित थी। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् जाति पंचायतों का न्यायिक स्वरुप दुर्बल पड़ने लगा, लेकिन राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में जाति पंचायत पि र भी शक्ति की एक प्रमुख स्रोत बनी रही।

प्रस्तुत क्षेत्र में जाति पंचायतें आज भी कमोवेश विद्यनमान हैं। यद्यनपि उच्च जाति में जाति–पंचायत पूर्णतया स्वीकृत नहीं है जबकि निम्न जातियों में भी कुछ ही जातियाँ जाति पंचायत के पक्ष में मत व्यक्त की है क्योंकि वे जातियाँ वर्तमान में भी असुरक्षा–बोध के कारण (सवर्णों से) आपस में संगठित रहना पसन्द करती हैं।

गरीबी के कारण अदालतों से दूर रहते हुए अपनी समस्त समस्याओं का समाधान जातीय आधार अर्थात् जाति–पंचायत द्वारा ही चाहते हैं।

मानव द्वारा आदिकाल से ही ज्ञान का संचय किया जाता है। प्रत्येक नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी द्वारा कुछ ज्ञान सामाजिक विरासत में प्राप्त होता है और कुछ वह स्वयं अर्जित करता है। शिक्षा ने ही मानव को पशु स्तर से ऊँचा उठाया है और श्रेष्ठ सांस्कृतिक प्राणी बनाया है। शिक्षा की अवस्थायें किसी देश के विकास की स्थिति को प्रकट करती हैं। शिक्षा के अभाव में ज्ञान–विज्ञान दोनों का अभाव होगा। शिक्षा को परिभाषित करते हुए दुर्खीम ने लिखा है– "शिक्षा अधिक आयु के लोगों द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली क्रिया है जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। इसका उद्देश्य में उन भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना जो कार्यक्रमों के माध्यम से लोगों को शिक्षित करने का सरकारी प्रयास किया जा रहा है।

जब उत्पादन कार्य मानव एवं पशु शक्ति के स्थान पर मशीनों द्वारा होने लगा तो उसे उत्पादों का मशीनीकरण कहने लगे। मशीनीकरण के माध्यम से उत्पादन की मात्रा बढ़ी, प लतः पै क्ट्री–प्रणाली का जन्म हुआ। पै क्ट्री प्रणाली ने औद्यनोगिक क्रान्ति को उत्पन्न किया। औद्यनोगिक क्रान्ति ने ही औद्यनोगीकरण का प्रादुर्भाव किया, जिसमें लघु कुटरी उद्यनोगों का स्थान विशाल उद्यनोगों ने लिया, कुटीर उद्यनोग में कम लोगों द्वारा छोटे–मोटे यन्त्रों से धीमी गति से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उत्पादन होता था। मशीनों के प्रयोग ने हजारों लोगों का एक साथ कार्य करना सम्भव बना दिया। औद्यनोगीकरण के परिणामस्वरुप नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। जहाँ भी आधुनिक उद्यनोग–धन्धे स्थापित हो जाते हैं, वहाँ काम करने के लिये मकान बनाने लगते हैं। उनकी

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार की दुकानें खुलती हैं। राजकीय कार्यालय खुलते हैं इस स्थान को सड़कों, मोटरों एवं रेल द्वारा प्रमुख स्थानों से जोड़ दिया जाता है धीरे–धीरे यह औद्यनोगिक बस्ती एक नगर का रुप ले लेती है आधुनिक नगरों का विकास औद्यनोगीकरण की ही देन है। नगरीकरण नगरों की वृद्धि और विस्तार की प्रक्रिया है। कृषि के स्थान पर व्यवसाय आजीविका का साधन बनता है और गाँवों से नगरों की ओर जाना नगरीकरण कहलाता है।

नगरीकरण की प्रक्रिया ने ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं को प्रभावित किया है। उनमें अनेक नवीन परिवर्तन हो रहे हैं तथा उनमें से अनेक विघटन तथा समस्याओं से ग्रस्त हैं। नगरीकरण ने ग्रामीण जीवन की जिन प्रमुख संस्थाओं को प्रभावित किया, वे अग्र हैं– जाति–व्यवस्था पर प्रभाव, परिवार, विवाह, नातेदारी पर प्रभाव, धर्म पर प्रभाव, शिक्षा पर प्रभाव, मनोरंजन पर प्रभाव, राजनीतिक संस्थाओं पर प्रभाव आदि। सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है और ग्रामीण लोग गाँव छोड़कर शिक्षा तथा व्यवसाय के लिये नगरों की ओर जाने लगे हैं। नगरों ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया है।

सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य के लिये बनाया गया कानून ही सामाजिक विधान कहलाता है, जिनका पालन करना एक समुदाय विशेष के सभी व्यक्तियों के लिये आवश्यक होता है। साधारणतया प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था में व्यवहार के कुछ ऐसे रुढ़िगत ढंग अवश्य पाये जाते हैं जो व्यक्तियों की वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपयोगी नहीं होते हैं। हमारे समाज में ऐसी समस्याओं और रुढ़ियों का रुप अत्यधिक विषम रहा हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों के परस्पर विरोधी कथनों के कारण सामाजिक भेद–भाव और विघटन की प्रक्रिया में सदैव वृद्धि होती रही है। इसके प्रभाव से हिन्दू स्त्रियाँ सभी प्रकार के अधिकारों से

वंचित हो गयी। विवाह, पारिवारिक अधिकारों और सम्पतित के क्षेत्र में उनका मनमाना शोषण किया जाने लगा। असमताकारी सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने से यहाँ एक बड़े अस्पृश्य वर्ग का निर्माण हुआ, जिसे देखने एवं स्पर्श करने मात्र से ही अपवित्र समझा जाने लगा। वैवाहिक जीवन में अनुलोम तथा अन्तर्विवाह में इन सभी कुरीतियों को धर्म के नाम पर संरक्षण मिलता रहा जिसके प लस्वरुप धार्मिक–सामाजिक व्यवस्थाओं का पुनर्परीक्षण करने का प्रयत्न किया गया और इनमें व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गयी। सामाजिक विधान सामाजिक समस्याओं को दूर करने में सप ल सिद्ध हुए हैं। इन विधानों से ग्रामीण सामाजिक ढाँचे में आमूल परिवर्तन हुए हैं। वैवाहिक सामाजिक कुरीतियाँ दूर हुई हैं। स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है। संयुक्त परिवार की स्वेच्छाचारिता समाप्त हो गयी है तथा अस्पृश्य जातियों को न्यायपूर्ण अधिकार मिले हैं।

भारतीय ग्रामीण समुदाय में व्याप्त अनेक समस्यायें जो असमानता का प्रमुख कारण हैं में अस्पृश्यता भी एक प्रमुख समस्या है। यहाँ के करोड़ों व्यक्तियों को अस्पृश्यता के नाम पर मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया और निम्नतम स्तर का जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य किया गया। इन पर सामाजिक–आर्थिक निर्योग्यताएँ थोप दी गयीं। जिससे इन्हें जीवन की सारी सुख–सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा।

अस्पृश्यता का तात्पर्य है– "जो छूने योग्य नहीं है।" यह एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे को छूने, देखने या छाया मात्र पड़ने से अपवित्र हो जाता है तथा पवित्र होने के लिये कुछ विशेष संस्कार करने पड़ते है। इस सम्बन्ध में डॉ. एन. शर्मा ने लिखा है कि– "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाये और उसे पवित्र होने के लिये कुछ कृत्य करने पड़े।"

अस्पृश्यता जाति व्यवस्था से सम्बद्ध है वैदिक काल में अस्पृश्यता से सम्बन्धित कोई समस्या नहीं थी। उत्तर वैदिककाल में अपवित्र समझे जाने वाले व्यक्तियों को चाण्डाल, डोम एवं अन्त्यज आदि नामों से सम्बोधित किया जाने लगा। परन्तु इनके प्रति सामाजिक भेदभाव और कटुता नहीं थी। स्मृति काल में अस्पृश्यता की भावना में तेजी से वृद्धि होने लगी। मनुस्मृति में बताया गया है कि चाण्डालों एवं श्रपाकों को गाँव के बाहर रहना चाहिये दिन में गाँव में नहीं आना चाहिये। इस काल में इनसे सारे गन्दे कार्य कराये जाते थे।

जब अस्पृश्यता एक सामाजिक बुराई के रुप में व्यापत होने लगी तो इससे मुक्ति दिलाने के लिये संवैधानिक स्तर पर प्रयास किये गये। 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम बनाया गया। जिसे 1976 में नागरिक संरक्षण अधिकार अधिनियम के रुप में परिवर्तित किया गया।

अस्पृश्यता ने हिन्दू समाज के सैकड़ों उच्च एवं निम्न स्थिति वाले समूहों में बाँटने में विशेष सहयोग दिया है। देश की एकता में बाधा पहुँचाई है। अस्पृश्यता के नाम पर सारे सुखों से वंचित रखा गया तथा पशुवत व्यवहार किया गया।

ग्रामीण समुदाय में जिसे जातिमूलक समुदाय कहा जाता है अस्पृश्यता एक गम्भीर समस्या रही है, कमोवेश आज भी उसका अस्तित्व बना हुआ है।

सारणी संख्या 8.1

क्या वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था से जनसमुदाय सन्तुष्ट है

क्र.सं.	सन्तुष्टि	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	261	65.25

2. नहीं 139 34.75

योग 400 100.00

सारणी संख्या 8.1 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था से जनसमुदाय सन्तुष्ट है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 65.25 प्रतिशत उत्तरदाता वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था से जनसमुदाय सन्तुष्ट है जबकि 34.75 प्रतिशत उत्तरदाता सन्तुष्ट नहीं है।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 65.25 प्रतिशत उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था से जनसमुदाय सन्तुष्ट है। जनसमुदाय की सन्तुष्टि का मुख्य कारण नवीन पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से चलाये जा रहे विकास कार्यक्रम है, जिसके कारण ग्रामीण सड़कें, बिजली, पानी की उचित व्यवस्था, रोजगार के साधन की उपलब्धि आदि ऐसे मुख्य कारक है जो पंचायतीराज व्यवस्था को सुदृढ़ बनाते है।

पंचायतीराज व्यवस्था के माध्यम से चलाये जा रहे कार्यक्रम द्वारा आज जनसामान्य में यह धारणा व्याप्त हो चुकी है कि सरकार गरीब, निम्नवर्ग के लिये जो भी कार्यक्रम चला रही है अगर उसका सम्पूर्ण क्रियान्वयन हो जाय तो अन्तिम व्यक्ति भी लाभान्वित हो सकता है। पंचायतीराज व्यवस्था की सप ला का यही मुख्य लक्ष्य है।

सारणी संख्या 8.2

73वें संविधान संशोधन के पश्चात् क्या ग्रामीण स्वरुप में परिवर्तन आया है

क्र.सं. परिवर्तन उत्तरदाताओं की संख्या प्रतिशत

1.	हाँ	285	71.25
2.	नहीं	115	28.75
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.2 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् क्या ग्रामीण स्वरुप में परिवर्तन आया है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 71.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् ग्रामीण स्वरुप में परिवर्तन आया है जबकि 28.75 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् भी ग्रामीण स्वरुप में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

सारणी के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् ग्रामीण स्वरुप में परिवर्तन आया है जिसके पक्ष में सम्पूर्ण उत्तरदाताओं में से 71.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने विचार व्यक्त किये है, उत्तरदाताओं के इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि नयी पंचायतीराज राजव्यवस्था अपने कार्यक्रमों में सप ल हो रही है। नयी पंचायती व्यवस्था की सप लता के पीछे नौकरशाही के साथ–साथ ग्राम प्रधानों तथा ग्रामीण विकास से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका सराहनीय है।

अतः यह कहा जा सकता है कि लगभग 20 वर्षों के पश्चात् 73वें संविधान संशोधन का असली स्वरुप निखर का सामने आया है।

सारणी संख्या 8.3

क्या गाँव के विकास में जनसमुदाय का सहयोग रहता है

क्र.सं.	जनसमुदाय का सहयोग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	275	68.75
2.	नहीं	125	31.25
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.3 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या गाँव के विकास में जनसमुदाय का सहयोग रहता है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 68.75 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि गाँव के विकास में जन समुदाय का योगदान रहता है, जबकि 31.25 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि गाँव के विकास में जनसमुदाय का कोई विशेष योगदान न होकर सरकार का सहयोग रहता है।

सारणी से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण विकास में कहीं न कहीं जनसमुदाय की भूमिका सकारात्मक है, क्योंकि बिना जन समुदाय के समर्थन के कोई भी कार्यक्रम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है, चाहे वह सड़क निर्माण हो, चाहे नाली निर्माण हो या गाँव की साप –सप ाई का प्रबन्ध अगर ग्रामीण समुदाय अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वहन नहीं कर रहा है तो कोई भी कार्यक्रम अपने लक्ष्य में सप लता हासिल नहीं कर सकता हैं।

अतः अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास में सरकारी मशीनरी के साथ–साथ जनसमुदाय का समर्थन, सहयोग और उनकी सकारात्मक भूमिका ही विकास का माध्यम है।

सारणी संख्या 8.4

क्या वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व के प्रति जन सामान्य की अच्छी राय है

क्र.सं.	जन सामान्य की राय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	220	55.00
2.	नहीं	180	45.00
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.4 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व के प्रति जन सामान्य की अच्छी राय है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 55.00 प्रशित उत्तरदाताओं का विचार है कि वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व के प्रति जन सामान्य की राय अच्छी है, जबकि 45.00 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते है कि वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व के प्रति जनसामान्य की राय अच्छी नहीं है?

सारणी के अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान ग्रामीण नेतृत्व के प्रति जन सामान्य की अच्छी राय नहीं लगती है, क्योंकि मात्र 55.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह स्वीकार किया है कि वर्तमान नेतृत्व की जनसामान्य पर अच्छी पकड़ है तथा 45.00 प्रतिशत उत्तरदाता इसको स्वीकार नहीं करते हैं।

इस अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि कहीं न कहीं ग्रामीण नेतृत्व अपनी भूमिका का सप ल निर्वहन नहीं कर पा रहा है क्योंकि अगर वह ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को अच्छी तरह से लागू करता तो शायद जन सामान्य में उनकी अपनी अच्छी पकड़ स्थापित होती हैं।

सारणी संख्या 8.5

क्या ग्रामीण योजनाओं का पूर्ण रुप से क्रियान्वयन होता है

क्र.सं.	योजना क्रियान्वयन उत्तरदाताओं की संख्या		प्रतिशत
1.	होता है	175	43.75
2.	नहीं होता है	225	56.25
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.5 के अध्ययन से उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि क्या ग्रामीण विकास योजनाओं का पूर्ण रुप से क्रियान्वयन होता है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 43.75 प्रतिशत उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि योजनाओं का पूर्ण रुप से क्रियान्वयन होता है, जबकि 56.25 प्रतिशत उत्तरदाता इसे अस्वीकार करते हैं।

सारणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कहीं न कहीं योजनाओं के ना लागू होने के पीछे सरकारी मशीनरी या नौकरशाही बाधक है, क्योंकि जो भी योजनायें सरकार के माध्यम से ग्रामीण तक पहुँची है वे पूर्ण रुप से लागू नहीं हो पाती, क्योंकि वह मानक के अनुरुप भुगतान न होने से बहुत सारी योजनाएँ अधूरी रह जाती है, इससे लगता है कि ग्रामीण विकास योजनाएँ पूर्ण रुप से क्रियान्वित नहीं हो पा रही हैं।

सारणी संख्या 8.6

क्या पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ गाँव पंचायतों को प्राप्त होता हैं

क्र.सं.	पंचवर्षीय योजना का लाभ	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत

1. होता है 268 67.00

2. नहीं प्राप्त होता है 132 33.00

योग 400 100.00

सारणी संख्या 8.6 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ ग्राम पंचायतों को प्राप्त होता है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 268 (67.00 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ ग्राम पंचायतों को प्राप्त होता है, जबकि 400 उत्तरदाताओं में से 132 (33.00 प्रतिशत) उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि पंचायतीराज व्यवस्था में योजनाओं का लाभ ग्राम पंचायत को नहीं प्राप्त हो रहा है।

सारणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 67. 00 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार है कि पंचवर्षीय योजनाओं का लाभ ग्राम पंचायत को प्राप्त हो रहा है।

इससे स्पष्ट है कि सरकार द्वारा चलायी जा रही पंचवर्षीय योजनाएँ जो पूर्ण रुप से ग्राम पंचायतों के लिये है का क्रियान्वयन ग्राम प्रधानों या ग्रामीण विकास से जुड़े कर्मचारियों के माध्यम से किया जा रहा है, लाभ ग्राम पंचायतों को प्राप्त हो रहा है।

सारणी संख्या 8.7

क्या आम जन की ग्रामीण उत्थान के प्रति अच्छी भूमिका रहती है

क्र.सं. ग्रामीण उत्थान के प्रति भूमिका उत्तरदाताओं की संख्या प्रतिशत

1. अच्छी है 261 65.25

2. ठीक नहीं है 139 34.75

योग 400 100.00

सारणी संख्या 8.7 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या आम जन की ग्रामीण उत्थान के प्रति अच्छी भूमिका रहती है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 261 (65.25 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामीण उत्थान में आमजन की पूर्ण सहभागिता रहती है, जबकि 130 (34.75 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामीण उत्थान में आमजन की कोई भूमिका नहीं होती है।

इस प्रकार अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 65.25 प्रतिशत उत्तरदाताओं का विचार प्रश्न के पक्ष में है, अतः यह कहा जा सकता है कि आमजन की भूमिका उत्थान के प्रति सकारात्मक है। यह एक अच्छी सोच हो सकती है, क्योंकि चाहे वह देश हो, समाज हो या गाँव विकास का यह सर्वोत्तम माध्यम है, मिलकर अच्छी भूमिका का निर्वहन करना।

सारणी संख्या 8.8

क्या ग्रामीण विकास के प्रति नेताओं को अधिकारियों से सहयोग मिलता है

क्र.सं. अधिकारियों से सहयोग उत्तरदाताओं की संख्या प्रतिशत

1. प्राप्त होता है160 40.00

2. नहीं प्राप्त होता है 240 60.00

योग 400 100.00

सारणी संख्या 8.8 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि ग्रामीण विकास के प्रति नेताओं को अधिकारियों का सहयोग प्राप्त होता है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 160 (40.00 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामीण विकास में नेताओं को अधिकारियों से सहयोग प्राप्त होता है जबकि 400 उत्तरदाताओं में से 240 (60.00 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि अधिकारियों से सहयोग नहीं प्राप्त होता है।

अतः अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 400 उत्तरदाताओं में से 240 (60.00 प्रतिशत) उत्तरदाता स्वीकार करते हैं कि उन्हें ग्रामीण विकास में अधिकारियों का सहयोग नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास के प्रति नौकरशाही का नकारात्मक रवैया आज भी चल रहा है, जिसमें ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं।

सारणी संख्या 8.9

क्या पंचायत बैठकों में जन सामान्य की भी भागीदारी रहती है

क्र.सं.	जन साामान्य की भागीदारी	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	होती है	155	38.75
2.	नहीं होती है	245	61.25
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.9 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि पंचायत बैठकों में जनसामान्य की भी भागीदारी रहती हैं के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 155 (38.75 प्रतिशत) उत्तरदाता यह मानते हैं कि पंचायत बैठकों

में जन सामान्य की भागीदारी रहती है जबकि 245 (61.25 प्रतिशत) उत्तरदाता यह स्वीकार करते हैं कि पंचायत बैठकों में जन सामान्य की कोई भागीदारी नहीं होती है।

अतः अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पंचायत बैठकों में जन सामान्य की कोई भागीदारी नहीं होती है। जन सामान्य का ग्रामीण विकास के प्रति कम रुझान यह स्पष्ट करता है कि अब जन सामान्य को कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रहगयी है जो लोग पंचायत व्यवस्था से जुड़े हुए हैं, उन्हें ही बैठकों में देखा जा सकता है।

सारणी संख्या 8.10

क्या ग्राम प्रधानों की भूमिका ग्रामीण विकास में सकारात्मक होती है

क्र.सं.	ग्राम प्रधानों की भूमिका	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	सकारात्मक	296	74.00
2.	नकारात्मक	104	26.00
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.10 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या ग्राम प्रधानों की भूमिका ग्रामीण विकास में सकारात्मक होती है के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 296 (74.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की यह सोच है कि ग्राम प्रधानों की भूमिका ग्रामीण विकास में सकारात्मक होती है जबकि 104 (26. 00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं यह मानते हैं कि ग्राम प्रधानों की भूमिका ग्रामीण विकास के प्रति नकारात्मक होती है।

इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 74 प्रतिशत उत्तरदाता ग्राम प्रधानों की भूमिका को ग्रामीण विकास में सकारात्मक मानते है इस प्रकार यह परिलक्षित होता है कि ग्राम प्रधान अपने ग्रामीण विकास के प्रति अच्छी राय रखते है, जो विकास का माध्यम बन सकता है।

सारणी संख्या 8.11

क्या नयी पंचायतीराज व्यवस्था में परिवर्तन क आवश्यकता है।

क्र.सं.	परिवर्तन की आवश्यकता	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	310	77.50
2.	नहीं	90	22.50
	योग	400	100.00

सारणी संख्या 8.11 में उत्तरदाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्या नयी पंचायतीराज व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है? के क्रम में सम्पूर्ण 400 उत्तरदाताओं में से 310 (77.50 प्रतिशत) उत्तरदाता नयी पंचायतीराज व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं। जबकि 90 (22.50 प्रतिशत) उत्तरदाता इसमें कोई परिवर्तन नहीं चाहते।

इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट है कि नयी पंचायतीराज व्यवस्था में अभी भी कुछ कमियाँ है, जिन्हें दूर किया जाना चाहिये, जिससे ग्रामीण विकास के पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके तथा महात्मा गांधी एवं राजीव गांधी के स्वप्नों के भारत को वह आधार मिल सके जिसकी कल्पना उन्होंने की थी।

सन्दर्भ सूची

1. बैजनाथ वर्मा, पावर इन विलेज इण्डिया इन कन्टेम्परोरी इण्डिया, पृष्ठ 110–118.

2. सत्य प्रकाश, ग्रामीण समाजशास्त्र, पृष्ठ 230.

3. योगेन्द्र सिंह, 'मार्डनाइजेशन ऑप इण्डियन ट्रेडिशन', पृष्ठ 188–89.

4. प्रो. एस.सी. दुबे, 'इण्डियाज चेंजिंग विलेजेज, पृष्ठ 8.

5. 'इण्डिया', गवर्नमेण्ट ऑप इण्डिया पब्लिकेशन, पृष्ठ 219.

6. प स्ट प ाइव इयर प्लान.

7. एम.एन. श्रीनिवास, 'दि डामिनेण्ट कास्ट इन रामपुरा', पृष्ठ 1–16.

8. एम.एन. श्रीनिवास, 'इण्डियाज विलेजेज', पृष्ठ 7.

9. आन्द्रे बेतेई, 'कास्ट क्लास एण्ड पावर'.

10. एस.सी. दुबे, 'कास्ट सोसियोलॉजी ऑप पं क्सनलिज्म, काण्ट्रिब्यूशन टू इण्डियन सोसियोलॉजी', पृष्ठ 84–91.

11. टी.एल. स्मिथ, 'दि सोसियोलॉजी ऑप रुरल लाईप ', पृष्ठ 8.

12. हर्टन एवं हन्ट, 'सोसियोलॉजी', पृष्ठ 293.

13. मैक्सवेबर, 'एस्से इन सोसियोलॉजी', पृष्ठ 180.

14. योगेन्द्र सिंह, 'दि चेंजिंग पावर स्ट्रक्चर ऑप विलेज कम्युनिटी, ए केस स्टडी ऑप सिक्स विलेजेज इन इस्टर्न यू.पी., इन रुरल सोमियोलाजी इन इण्डिया, ए.आर. देसाई, पृष्ठ 709–722.

15. डॉ. आर.एन. सक्सेना, भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थायें, पृष्ठ 45.

16. डॉ. इरावती कार्वे, 'किनशिप आर्गनाइजेशन इन इण्डिया', पृष्ठ 1.

17. डी. एन. मजूमदार, रेसेज कल्चर इन इण्डिया, पृष्ठ 1.